International Journal of Applied Research 2015; 1(4): 129-131

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(4): 129-131
www.allresearchjournal.com
Received: 19-01-2015
Accepted: 23-02-2015

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0प्र0)

Correspondence
डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0प्र0)

पाल्यकीर्ति शांकटायन के शब्दानुशासन में जैन धर्म की दार्षनिक एवं नवीन शब्दावली

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण को बहुत ही ऊँचा स्थान प्राप्त है। यद्यपि संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि का स्थान सर्वोच्च है तथापि परवर्ती काल में समय–समय पर बहुत से व्याकरणों का भी उदय हुआ। जिसमें विशेष रूप से जैन धर्मावलम्बी आचार्यों ने अपने धर्म को सर्वोपरि सिद्ध करने हेतु संस्कृत वाङ्मय में बहुत से उत्तमोत्तम व्याकरणिक ग्रन्थों को रचकर अपनी धार्मिक मान्यताओं का प्रचार एवं प्रसार किया है।

इन्हीं आचार्यों में पाल्यकीर्ति शाकटायन ने नवीं शताब्दी में राजा अमोघवर्ष के शासन में एक सर्वांीण व्याकरण ग्रन्थ की यह घोषणा करते हुये रचना की कि बालक एवं स्त्रीजन इस वृत्ति के अभ्यास से एक ही वर्ष में समस्त वा□मय को जान सकते हैं–

बालाबलोजनोऽप्यस्या वृत्तेरभ्यासवृत्तितः।
समस्त वाङ्मयं वेत्ति वर्षेणेकेन निश्चयात्।। [1]

आचार्य शाकटायन ने जैनधर्म एवं उसके प्रतिष्ठाता आचार्यों से सम्बन्धित, धार्मिकस्थलों से सम्बन्धित एवं उनके धार्मिकग्रन्थों के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त करते हुए अपने मन्तव्य अमोघवृत्ति जो कि शाकटायन व्याकरण पर आपकी अपनी ही बृहदवृत्ति है, उसमें विस्तृतरूप से दिये हैं। जिसके आधार पर कहा जा सकता है, कि तत्कालीन समय में जैनधर्म उन्नति की स्थिति में अवश्य रहा होगा। जिसका साक्षात् प्रभाव उनके व्याकरण एवं उनकी अमोघवृत्ति पर देखा जा सकता है।

<u>जैन दार्शनिक शब्दावली</u> :

1. अर्थो जिनदत्ताय भूयात्। भद्रमस्तु जिनशासनाय (शासनं दर्शनं शास्त्रमागमः पुरुषोमतम् इति सुभुतिटिके)। [2]
2. चक्षुषा ग्राह्यत इति चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। दार्शनं स्पार्शने च द्रव्यम्। [3]
3. योग शब्दः सम्बन्धसामान्यवाची तेन समवायः संयोगेऽप्याक्षिप्तः (गुणगुणिनोः समवायः, द्रव्ययोरेव संयोगः)। [4]
4. जातिक्रियागुणद्रव्यभेदेन चतुष्टतयी शब्दानां प्रवृत्तिः इति वचनात्। [5]
5. अपवारितं च पिहितं, संवीतं, संवृतम्। [6]
6. निर्वाणमस्तगमने निर्वृतौ गजमज्जने।
   अपवर्गेऽपि कुर्वाणो भृत्यकारकयोरपि।। [7]

जैन ग्रन्थः

समस्त संस्कृत साहित्य में उत्तम ग्रन्थों के लेखन का पुनीत कार्य जैन विद्वानों ने किया है। जिनमें कई विद्वानों ने तो काशिका जैसे महान ग्रन्थों की वृत्ति भी लिखी है एवं कई विद्वानों ने स्वतन्त्र व्याकरणों को भी रचा है। जिसमें पूज्यपाद देवनन्दी द्वारा रचित जैनेन्द्र व्याकरण एवं पाल्यकीर्ति शाकटायन द्वारा रचित शाकटायन व्याकरणों को प्रभुखरूपेण उद्धृत किया जा सकता है। यहाँ अमोघावृत्ति में जैन ग्रन्थों का सूक्ष्मरूपेण विह□□वलोकन करना उचित होगा।

1. जैनन्दिनः संग्रहः। सिद्धसेनीयस्तवः। चौलूकाः श्लोकाः। [8]
2. कालिकसूत्र। [9]
3. सूत्रनिर्युक्तिः। [10]
4. छेदसूत्र। [11]

<u>जैनस्थलः</u>

आचार्य शाकटायन ने अपनी वृत्ति में कई सुप्रसिद्ध जैनस्थलों का नाम दिया है। इन नामों से ऐसा प्रतीत होता है, कि तत्समय में ये स्थान शिक्षा–दीक्षा एवं आस्था के प्रमुख केन्द्र रहे होंगे। क्योंकि परवर्ती साहित्य में भी ये स्थल जैन विद्वानों की कर्मभूमि रहे है। ऐसे ही कतिपय स्थलों का विवेचन नीचे किया जा रहा है–

1. सप्तकाशि, त्रिकोशलस्य राज्यम्। [12]
2. सौह्यनागरः, पौण्ड्रनागरः, वाज्रनागरः, वैराटनागरः, गौरिनागरः। [13]
3. पौरवम् आ□वम्, वा□वम्, मागधकम्, कालि□कम्, शौरमसकम्। [14]
4. मथुरा, उज्जयिनी, गया, तक्षशिला, उरशा बदरी, कुटुकबदरी। [15]
5. कौशाम्बी नगरी। [16]
6. वाहीकग्रामः (तत्र जातः देवदत्तः)। [17]

जैन तीर्थंकर एवं जैन विद्वानः
आचार्य शाकटायन ने अमोघावृत्ति में अनेक तीर्थंकरों एवं जैन विद्वानों के नाम उदाहरण के रूप में दिये हैं।

जैनतीर्थंकरः :
1. अष्टमोजिनचन्द्रप्रभः। [18]
2. शान्तिर्भगवान। [19]

जैन विद्वान :
1. आर्यवज्र। [20]
2. अनुशाकटायनं वैयाकरणाः। अनुसिद्धनन्दिनं संग्रहीतारः। उपसर्वगुप्तं व्याख्यातारः। उपविशेषवादिनः कवयः। [21]
3. श्रुतपालः। [22]

जैन पारिभाषिक शब्दावली :
जीव : अजीव : जैन पारिभाषिक शब्दावली में इन दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है। चैतन्य विशेषण वाले जीव कहते हैं। यह (संसारी जीव) प्रभु–द्रव्य–भाव कर्मों के आस्रवादि का स्वामी, कर्मों का कर्ता–भोक्ता प्राप्त शरीर के आकार के परिमाण वाला, कर्म के साथ होने वाले एकत्व परिणाम की अपेक्षा मूर्त और कर्म से संयुक्त होता है। ज्ञान, दर्शन सुख और दुख से लक्षित होने के कारण जीव का लक्षण है। ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, वीर्य और उपयोग (अवधानता) यह जीव का लक्षण है। इसके विपरीत **अजीव :** जिसमें चेतना न पायी जाये, उसे अजीव कहते हैं। [23]

श्रुतकेवलि : जो श्रुत के द्वारा केवल अर्थात् शुद्धरूप वाली इस आत्मा को जानता है, उसे लोक के प्रकाशक ऋषीजन श्रुतकेवली कहते हैं। यह श्रुतकेवली का यथार्थ लक्षण है। जो समस्त श्रुतज्ञान को जानता है, उसे जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं। यह श्रुतकेवली का औपचारिक लक्षण है। अतः सब ज्ञान ही आत्मा है। इसलिए जो श्रुतज्ञान से अभिन्न आत्मा को जानता है। उसे श्रुतकेवली कहना यथार्थ है। [24]

जिन : जिन उन्हें कहते हैं, जिन्होंने क्रोधादि कषायों को जीत लिया है। वे जिन कहलाते हैं। [25]

गच्छः : तीन पुरुषों का गण और उसके आगे गच्छ होता है। एक आचार्य के नेतृत्व में रहने वाले साधुओं के समूह को गच्छ कहते हैं। [26]

अनेकान्त : एक वस्तु में मुख्यता और गौणता की अपेक्षा अस्तित्व, नास्तित्व आदि परस्पर विरोधिधर्मों के प्रतिपादन को अनेकान्त कहते हैं। [27]

संयतः : जो साधु पाँच समितियों से सम्पन्न, तीन गुप्तियों से परिपूर्ण, पाँचों इन्द्रियों का विजेता कषाय पर विजय प्राप्त करने वाला तथा दर्शन, ज्ञान एवं चरित्र से परिपूर्ण होता है, उसे संयत कहते हैं। जो अहिंसा आदि के परिपालन में प्रयत्नशील रहता है। वह संयत कहलाता है। [28]

स्याद्वाद् : अनेकान्तमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। किसी भी एक शब्द या वाक्य के द्वारा सारी की सारी वस्तु का युगपत् कथन करना, अशक्य होने से प्रयोजनवश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं एवं कभी किसी दूसरे धर्म को सुनते हुए श्रोता को अन्य धर्म भी गौणरूप से स्वीकार्य होते हैं। उनका निषेध न होने पाये इस प्रयोजन से अनेकान्त की अपने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् या कथ□त् शब्द का प्रयोग करता है। [29]

तीर्थंकर : संसार सागर को स्वयं पार करने तथा दूसरों को पार कराने वाले महापुरुष तीर्थंकर कहलाते हैं। [30]

भट्टारक : जो समस्त शास्त्रों एवं कलाओं से परिचित व गच्छों को बढ़ाने वाला है, ऐसे प्रभावशाली महामनस्वी को भट्टारक कहा जाता है। जो भट्ट अर्थात् पण्डितों को प्रेरित किया करता है। उसका नाम भट्टारक है। [31]

शाकटायन व्याकरण में प्रयुक्त नूतन शब्दावली :
'प्रसित' तथा 'उत्सुक' शब्दों के योग में पाणिनि ने अष्टाध्यायी में "प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च" 2.3.44। सूत्र द्वारा विकल्प से तृतीया तथा सप्तमी विभक्तियों का प्रयोग किया है। जबकि शाकटाय ने 'प्रसित' एवं 'उत्सुक' शब्दों के साथ–साथ "अववद्व" शब्द के योग में भी अप्रधान आधारवाची शब्द से विकल्प से टा, भ्याम्, भिस् प्रत्ययों का विधान किया है। इस प्रकार शाकटायन ने कारक प्रकरण में "प्रसिताऽववद्धोत्सुकैः" शा0व्या0 1.3.32 सूत्र द्वारा "केशैश्ववद्ध" एवं "केशेश्ववद्धः" आदि नवीन प्रयोगों को स्थान दिया है।
पाणिनि ने (अपे च लषः अष्टा0 3.2.144) अप एवं वि उपसर्गपूर्वक लष् धातु से तच्छीलादि अर्थ में घिनुण् प्रत्यय का विधान करके "अपलाषी" एवं "विलाषी" कृत्रूपों की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने तच्छीलादि अर्थ में घिनञ् प्रत्यय (लपोऽषे च। शा0व्या0 4.3.246) द्वारा अपलापी एवं विलापी नवीन शब्दों का निर्माण किया है।
पाणिनि ने अष्टाध्यायी में (सूत्रं प्रतिष्णातम्। 8.3.90) सूत्र अर्थात् तन्तु अर्थ में प्रति उपसर्गपूर्वक स्ना धातु के सकार के स्थान पर षत्व करके निपातन से "प्रतिष्णातम्" की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने (प्रति + स्नात) में स्नात को ष्णात् आदेश किया है– (प्रतेः ष्णातं सूत्रे। शा0व्या0 2.2.152) इसके साथ ही साथ किसी सूत्रविशेष का वाची होने पर प्रति उपसर्गपूर्वक स्नात् उत्तरपद को "ष्णान्" आदेश का भी विधान किया है। जबकि शाकटायन से पूर्ववर्ती वैयाकरणों ने "प्रतिष्णान्" शब्द की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है।
आचार्य पाणिनि ने "उमाव्यासकम्" एवं "ऐषकम्" की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने "उमाव्यास" एवं "ऐषमस्" कालवाची सप्तम्यन्त शब्दों से देयऋण अर्थ में "अक" प्रत्यय (कलाप्यश्वत्थयव वुसोमाव्यासैषमसोऽकः। शा0व्या0 3.1.107) करके उपरोक्त रूपों की सिद्धि की है।
"अन्तपुरिका" की सिद्धि हेतु पाणिनि ने कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने "अन्तःपुर" शब्द (ठोऽन्तः पुराद्रूढौ। शा0व्या0 3.1.128) रूढि अर्थ में "ठः" प्रत्यय के योग से सिद्ध किया है।
पाणिनि ने "तन्मयी" एवं "भवन्मयी" शब्दों की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने "मयट्" प्रत्यय के योग से "प्रभवति" अर्थ में (तदर्दमयट्। शा0व्या0 3.1.167) उपर्युक्त रूपों की सिद्धि की है।
पाणिनि ने "अघप्रातीन्" शब्द की सिद्धि नहीं की है। जबकि शाकटायन ने (परोवरीण.....साप्तपदीनम्। शा0व्या0 3.3.59) निपातन से इसकी सिद्धि की है।
आचार्य पाणिनि ने "कुलात्खः" अष्टा0 4.1.139 सूत्र से अपत्यार्थ में "खः" प्रत्यय के संयोग से कुलीन शब्द की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने इस शब्द के अतिरिक्त "जल्पार्थे" में भी "कुलाज्जल्पे। शा0व्या0 3.3.32 सूत्र द्वारा "कौलीन" शब्द की सिद्धि की है।
पाणिनि ने "शर्वशरावीण" शब्द की सिद्धि के लिए अष्टाध्यायी में कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने सर्वपूर्वक शराव शब्द से व्याप्नोत्ति अर्थ में "खः" प्रत्यय का विधान करके "शर्वशरावीण" की सिद्धि प्रस्तुत सूत्र द्वारा (सर्वादे पथा□ कर्मपत्रपात्रशरावाद्वयापिनि। शा0व्या0 3.3.53) की है।
पाणिनि ने "यथाकामीन" शब्द की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने "यथाकाम" शब्द से गामी अर्थ में (यथाकामानुकामात्यन्तपारावारपारागामिनि। शा0व्या0 3.3.35) "खः" प्रत्यय के योग से उपर्युक्त रूप की सिद्धि की है।
पाणिनि ने "कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति।" अष्टा0 4.4.72 सूत्र से कठिनान्त शब्दों तथा प्रस्तार एवं संस्थान शब्दों से व्यवहरति अर्थ में ठक् प्रत्यय का विधान करके वांशकठिनिकः, प्रास्तारिकः एवं सांस्थानिक आदि शब्दों की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त प्रस्तारान्त एवं संस्थानान्त शब्द "संस्थानप्रस्तारतदन्तकठिनान्तेषु व्यवहरति। शा0व्या0 3.2.25 सूत्र से "ठण्" प्रत्यय करके "आश्वसंस्थानिकः" एवं "कांसप्रस्तारिकः" इत्यादि शब्दों की सिद्धि की है।
पाणिनि व्याकरण में "अर्धपलिकम्" एवं "अर्धकर्विकम्" शब्दों की सिद्धि लिए कोई सूत्र नहीं है। जबकि शाकटायन ने "अर्धात्पलकंसकर्षात्। शा0व्या0 3.2.131 सूत्र द्वारा अर्ध उपपदपूर्वक पल एवं कर्ष शब्दों से "ठट्" प्रत्यय का विधान करके उपर्युक्त शब्दों की सिद्धि की है।
पाणिनि ने अष्टाध्यायी में "कृपालु" शब्द की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने "कृपाहृदयादालुः" शा0व्या0 3.3.138 सूत्र द्वारा कृपा शब्द से आलुः प्रत्यय लगाकर "कृपालुः" शब्द की सिद्धि की है।
आचार्य पाणिनि ने "काण्डाण्डादीरन्नीरचौ।" अष्टा0 5.2.111 सूत्र द्वारा ईर् प्रत्यय लगाकर "काण्डीरः" "आण्डीरः" "अण्डीरः" (पाठभेद से) शब्दों की सिद्धि की है। तथा "भाण्डीरः" के लिए कोई नियम नहीं है। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त "काण्डाण्डभाण्डीदीरः।" शा0व्या0 3.3134 सूत्र द्वारा "भाण्डीरः" (वणिङ्मूलधने पात्रे भाण्डंभूषाश्वभूषयोः अमोघावृत्ति 3.3.134) की भी सिद्धि की है।
पाणिनि ने अष्टाध्यायी में "कुटीशमीशुण्डाभ्योरः" अष्टा0 5.3.88 सूत्र द्वारा शमी शब्द से ह्रस्वार्थ द्योतन के लिए रः प्रत्यय के योग से "शमीरः" शब्द की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त अर्थ में ही शमी शब्द से "रू" एवं "रः" प्रत्यय (शम्यारूरौः। शा0व्या0 3.4.107) लगाकर "शमीरः" एवं "शमीरू" की भी सिद्धि की है।
पाणिनि ने अष्टाध्यायी में "तेनचरति" अर्थ में पर्पादि शब्दों से "ष्ठन्" अथवा "ठट्" प्रत्यय लगाकर "पर्पिकः" "अश्विकः" इत्यादि शब्द बनते हैं। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त अर्थ में ही भिन्न प्रत्यय (पर्पार्दष्ठण्। शा0व्या0 3.2.107) द्वारा "पार्पिकः" एवं "आश्विकः" आदि तद्धितान्त शब्दों की सिद्धि की है।
पाणिनि ने अष्टाध्यायी में "अर्हति" अर्थ में पात्र एवं यज्ञ शब्दों से "घन्" अथवा "घ" प्रत्यय का विधान करके "पात्रिय" एवं "यज्ञीय" शब्दों की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त अर्थ में "छः" प्रत्यय के योग से "पात्रीय" एवं "यज्ञीय" शब्दों की सिद्धि की हैं।
उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त भी शाकटायन के कई नवीन प्रयोग स्थल हैं जिनका नाम मात्र बिना व्याख्या के नीचे प्रस्तुत है यथा–– "सांकोटिनम्।" शा0व्या0 1.1.60, "वाकत्वम्।" शा0व्या0 1.1.64, "प्रेजुः प्रोपुः।" शा0व्या0 1.1.77, "सुखऋतः, दुखऋतः।" शा0व्या0 1.1.89, "खषीरं, अफसरा" शा0व्या0 1.1.114
इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि पाणिनि व्याकरण की पूर्णता होने पर भी

शाकटायन व्याकरण का उद्देश्य संक्षेपीकरण एवं तत्समय भाषा में आये नवीन प्रयोगों को सिद्ध करना भी था।

सन्दर्भ

1. शाकटायन व्याकरण, पृ0 1।
2. शा0व्या0 अमोघावृत्ति 1.3.141।
3. शा0व्या0 अमोघावृत्ति 2.4.239।
4. वही, 1–3–93।
5. वही, 3–3–72।
6. वही, 4–2–210।
7. वही, 4–3–33।
8. वही, 3–1–86।
9. वही, 3–2–74।
10. वही, 1–4–120।
11. वही, 4–4–133।
12. वही, 2–1–18।
13. वही, 2–3–117।
14. वही, 2–4–100।
15. वही, 2–4–193।
16. वही, 2–4–194।
17. वही, 3–1–29।
18. वही, 3–4–118।
19. वही, 4–1–265।
20. वही, 1–2–13।
21. वही, 1–3–104।
22. वही, 4–1–252, 253।
23. जैन लक्षणावली, पृ0 465। शा0व्या0, अमोघावृत्ति, 3–3–73।
24. इति श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यशाकटायनकृतौ शब्दानुशासने अमोघवृत्तौ प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादावसाने। शा0व्या0, अमोघावृत्तिपुष्पिका, जैन लक्षणावली, द्वितीय भाग, पृ0 373।
25. जानीते जिनवचनं श्रद्धते, चरति चाऽऽर्यिका शवलम्। नाऽस्याऽस्त्य संभवोऽस्यां नाऽदृष्टविरोधगतिरस्ति। इति जिनकल्पादीनां युक्त्यांगा नाम योग्य इति सिद्धेः। स्याद् अष्टवर्षजातादिरयोग्योऽदीक्षाणीय इवं।। शा0का0 स्त्रीमुक्तिप्रकरणम् श्लोक 4, 19।
26. शा0व्या0, अमोघावृत्ति, 1–4–56।
27. जैन लक्षणावली, पृ0 83।
28. शा0व्या0, अमोघावृत्ति 1–1–157, जैन लक्षणावली, तृतीय भाग, पृ0 1127।
29. शा0व्या0, अमोघावृत्ति 1–4–22, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, चतुर्थ भाग, सम्पा0 वर्णी जिनेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1973, पृ0 497।
30. जैन सि0को0, द्वितीय भाग, पृ0 370।
31. जै0ल0 वालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, वीर सेवा मन्दिर, दरियावगंज दिल्ली 1979 पृष्ठ 833।